IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

ब्रह्माण्ड पुराण का सांस्कृतिक मूल्यांकन

राजेश्वर चौधुरी

शोधार्थी, संस्कृत विभाग, तिलका माँझी भागलपुर विश्वविद्यालय

SACT – 1, गौर महाविद्यालय, मालदा, पश्चिम बंगाल

अष्टादश पुराणों मे "ब्रह्माण्डपुराण" अन्तिम पुराण है। उच्चकोटि के पुराण में इसे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसकी प्रशंसा में पुराणकार यहां तक चले गये कि उन्होंने इसे वेद के समान घोषित किया। इसका अभिप्राय यह हुआ कि पाठक जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वेद का अध्ययन करता है उस तरह की विषय सामग्री उसे यहां भी प्राप्त हो जाती है और वह जीवन को चतुर्मुखी बना सकता है।

इस पुराण के पठन-पाठन, मनन-चिन्तन और अध्ययन की परम्परा भी प्रशंसनीय है। गुरू ने अपने शिष्यों में से इसका ज्ञान अपने योग्यतम शिष्य को उसका पात्र समझ कर दिया ताकि इसकी परम्पर अवध गति से निरन्तर चलती रहे। इस पुराण के नामकरण का रहस्य है कि इसमें समस्त ब्रह्माण्ड का वर्णन है। भुवन कोष का उल्लेख तो सभी पुराणों में मिलता है परन्तु प्रस्तुत पुराण में सारे विश्व का सांगोपांग वर्णन उपलब्ध होता है। इसमें विश्व के भूगोल का विस्तृत व रोचक विवेचन है इसमे ऐसी-ऐसी जानकारी मिलती है, जिसे देखकर आश्चर्य होता है कि बिना वैज्ञानिक सहयोग के इतन गहन खोज कैसे की होगी। वैज्ञानिक युग में अभी तक उसकी पुष्टि भी नहीं हो पायी है।

इस पुराण के विषय में एक विशेष बात यह है कि ईसवी सन् 5वीं शताब्दी में इस पुराण को ब्राह्मण लोग जावा द्वीप ले गये थें। वहां की प्राचीन "कवि भाषा" में अनुवाद हुआ जो आज भी मिलता है। इससे इस पुराण की प्राचीनता का भी बोध होता है पुराण को साहित्य की दृष्टि से भी उत्कृष्ट माना जाता है। क्योंकि निबन्ध ग्रन्थों में इसके श्लोक दिखाई देते हैं। मिताक्षरा अपरार्क स्मृति चन्द्रिका कल्पतरु में इसके श्लोक उद्धृत किये गये हैं। इससे लगता है कि साहित्यकारों की दृष्टि में यह पुराण उच्च महत्व का है। कालिदास की रचनाओं का और उनकी वैदर्भी रीति का प्रभाव भी इस पुराण के विवेचन पर हैं। इतिहासकारों का मत है कि पुराण की रचना गुप्तोत्तर युग में अर्थात् 600 ई. में मानना उचित है।

पुराणकार परशुराम तथा कार्तवीर्य हैहय के संघर्ष को बड़ा महत्व देता है और उसमें इस कथा के विस्तार के निर्मित लगभग डेढ़ हजार श्लोकों का उपयोग किया है। सह्य पर्वत के उत्तर में प्रवाहित होने वाली गोदावरी नदी वाला प्रदेश भारतवर्ष में समाधिक रमणीय तथा मनोरम बतलाया गया है। जिससे अनुमान होता है कि ब्रह्माण्ड के निर्माण का यही विशिष्ट देश था।[1]

ब्रह्माण्ड निश्चयेन परशुराम की महिमा तथा गौरव का प्रतिपादन असाधारण ढंग से करता है। परशुराम का सम्बन्ध भारतवर्ष के पश्चिमी तटवर्ती सहयाद्री प्रदेश से है। परशुराम जी प्रथमतः महेन्द्र पर्वत (गंजम जिले में पूर्वी घाट की आरम्भिक पहाड़ी) पर तपश्चर्या करते थे। समग्र पृथ्वी को दान में दे डालने पर उन्हें अपने लिए भूमि खोजने की जरूरत पड़ी। उन्होंने समुद्र से वह भूमि मांगी तो सहयादि तथा अरब सागर के मध्य में संकर जमीन है। वहीं कोंकण है, जो चित्पावन ब्राह्मणों का मूल स्थल है। इस प्रकार परशुराम विशेष भावेन सम्बद्ध होने से "ब्रह्माण्ड पुराण" का उदय स्थल सहयाद्रि तथा गोदावरी प्रदेश में होना सर्वध सुसंगत है।

[1] ब्रह्माण्ड पुराण – 2/16/43-44

१. पुराण-परम्पराः-

पुराण परम्परा के अनुसार गुरु अपने शिष्यों में से इसका ज्ञान अपने योग्यतम शिष्य को उसका पात्र समझ कर देता है ताकि इसकी परम्परा अबाध गति से निरन्त चलती रहे इसी क्रम में भगवान प्रजापति ने वशिष्ट मुनि को, वशिष्ठ ऋषि ने परम पुण्यमय अमृत के सदृश इस तत्व ज्ञान को शक्ति के पुत्र अपने पौत्र पराशर को दिया। प्राचीन काल में भगवान पराशर ने इस परम दिव्य ज्ञान को जातुकर्ण्य ऋषि को जानुकर्ण्य ऋषि ने परम संयम द्वैपायन को पढ़ाया।

द्वैपायन ऋषि ने श्रुति के समान इस अद्‌भुत पुराण को अपने पांच शिष्यों जैमिनी, सुमन्त, वैशम्यायन, पैल और लोमहर्षण को पढ़ाया। सूत परम विनम्र, धार्मिक और पवित्र थे। अतः उनको यह अद्‌भुत वृतान्त वाला पुराण पढ़ाया था। ऐसी मान्यता है कि सूत जी ने इस पुराण का श्रावण भगवान व्यास देव जी से किया था। इन परम ज्ञान सूत जी ने ही नैमिषारण्य में महात्मा मुनियों को इस पुराण का प्रवचन किया था।[2] वही ज्ञान आज हमारे सामने है। पुराणों का यही ज्ञान हमारी सांस्कृतिक धरोहर है।

२. वर्णाश्रम की व्यवस्थाः-

"ब्रह्माण्ड पुराण" काल में भी वर्णाश्रम की व्यवस्था थी। इसका प्रमाण उस पुराण में वर्णित आश्रमों से प्राप्त होता है। प्रस्तुत पुराण के अनुसार सृष्टि का कर्ता ब्रह्म ही धर्मादि की भी सृष्टि करता है "ब्रह्माण्ड पुराण" के अनुसार "धर्म से चारों वर्णों की ओर चारों आश्रमोंकी संस्थिति होती है।"[3] पुराण के अनुसार ही ब्राह्मणों की उत्पत्ति ब्रह्म स्वरूप उस प्रजापति के मुख से, क्षत्रियों की उत्पत्ति हाथों से, वैश्यों की उत्पत्ति उदर से तथा शुद्रो की उत्पत्ति पैरों से बतलायी गयी है चारों वर्णों और चारों आश्रमों का विभाजन भी बतलाया गया है।

"ब्रह्माण्ड पुराण" में वर्णित जमदग्नि-आश्रम, अगस्त्याश्रम, कपिलमुनि आश्रम, और्वाश्रम, वशिष्ठ मुनि आश्रम, विश्वामित्र आश्रम आदि से ज्ञात होता है कि उस समय में आश्रम व्यवस्था प्रचलन में थीं। सभी चारों आश्रमों को अपनाकर ही मोक्ष प्राप्त करते थे। वे जिस भी आश्रम में प्रवेश करते थे उस आश्रम का पालन निष्ठापूर्वक करते थे। इस प्रसंग में एक उदाहरण राजा विश्वामित्र का प्राप्त होता है, जो एक क्षत्रिय राजा थे परन्तु उन्होंन कठोर तपश्चर्या का पालन कर ऋषि होने का गौरव प्राप्त किया।

"ब्रह्माण्ड पुराण" का अध्ययन करने से पता चलता है कि उस समय में चार वर्ण समाज में विद्यमान थे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र इनका अपने वर्णों के अनुसार ही कर्म का विभाजन भी था अर्थात् ब्राह्मणों का कार्य वेदाध्ययन करना, पुरोहित बनना, धार्मिक कर्मकाण्डो को करते हुए भिक्षा ग्रहण करके जीविकोपार्जन करना था। क्षत्रियों का कर्म देश, राज्य की सुरक्षा करना एवम् आम प्रजा की देखरेख एवम् सुख-सुविधाओं का ध्याना रखना था राजा भी क्षत्रिय होता था तथा वैश्यों का कर्म धन सम्बन्धी लेखा जोखा व्यापारिक कार्य एवम् वाणिज्य का कार्य था। इन सबसे अलग शुद्रों का कार्य चमड़ा बनाना, कुम्हार, साफ-सफाई आदि क्षत्रियों की सेवा करने का कार्य था।

आश्रम व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य, ये तीनों वर्ण ही इस आश्रम व्यवस्था का पालन करते थे। शुद्धों को इसका अधिकार नहीं था। उन्हें केवल सेवा योग्य समझा जाता था। प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्य आश्रम था। इसमें व्यक्ति शिक्षा ग्रहण कर जीविकोपार्जन के तरीके सीखता है, जिससे वह आगे गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता है। इसी आश्रम में वह सोलह संस्कारों को पूर्ण करता है। इसी आश्रम में उसे धर्म, अर्थ, काम त्रिवर्ग की प्राप्ति होती है तत्पश्चात वह वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करता है वहां वह अपनी धन-सम्पत्ति, घर आदि अपने पुत्र-पौत्रों को सौंपकर पत्नी सहित वन जाकर आश्रम बनाकर शिष्यों को शिक्षित करता है और अन्त में सन्यासाश्रम के अनुसार सन्यास ग्रहण कर प्रभु भक्ति में लग जाता है यहीं उसे मोक्ष की प्राप्ति भी होती है।

३. सती प्रथा परम्पराः-

सती प्रथा का चलन आदिकाल से ही चला आ रहा है परन्तु यह कुप्रथा अब समाप्त कर दी गयी है। पुराण काल में भी इस प्रथा का चलन था इसका प्रमाण हमे "ब्रह्माण्ड पुराण" में प्राप्त होता है।

"ब्रह्माण्ड पुराण" के अनुसार जब कार्तवीर्य द्वारा जमदग्नि ऋषि का वध कर दिया गया। तब ऋषि पत्नी रेणुका परशुराम सहित अपने सभी पुत्रों को साक्षी रखकर अपने पति की चिताग्नि में सती होने को तत्पर होती है तब आकशवाणी द्वारा उसको प्रति के पुर्नजीवित होने की सूचना देकर सती होने से रोक दिया जाता है।[4]

---

[2] ब्र. पु. – 3/4

[3] ब्र. पु. – कृत्य समुद्देश - 92

[4] ब्र. पु. – 20/38-46

उपर्युक्त वक्तव्य से ही पता चलता है कि"ब्रह्माण्ड पुराण" काल में भी सती प्रथा प्रचलन में थी। सती प्रथा का तात्पर्य केवल पति के साथ उसकी पत्नी का चिता में जिंदा जलना ही नहीं होता था अपितु कभी-कभी स्त्रियों अपने आत्म सम्मान के लिए भी सती हो जाया करती थी। ऐसा ही एक उदाहरण शिव की पत्नी सती का है, जो यज्ञ में अपने पिता द्वारा अपने पति को न बुलाये जाने से अपमानित होकर स्वयं ही सती हो गयीं।[5]

ऐसे अन्य भी प्रसंग है जो सती प्रथा के प्रचलन को दर्शाते है परन्तु आज इस प्रथा का अस्तित्व प्राप्त नहीं होता है।

४. यज्ञादि का विधानः-

यज्ञों की परम्परा प्रारम्भ से ही चली आ रही है। इन यज्ञों को अलग-अलग उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है जैसे राजसूय यज्ञ, अश्वमेध यज्ञादि। इसके अतिरिक्त पुत्र प्राप्ति के यज्ञ, अकाल वृष्टि से सम्बन्धित यज्ञ, देवताओं को प्रसन्न करने के यज्ञ, शक्ति प्राप्ति के यज्ञादि का भी विधान था।

"ब्रह्माण्ड पुराण" में भी यज्ञों का वर्णन किया गया है। पुराण के अनुसार सृष्टि के सृजन के लिए स्वयं ब्रह्मा जी ने एक यज्ञ किया, जिसमे वह स्वयं यजमान थे। यह यज्ञ नैमिष नामक अरण्य में बारह वर्षों तक चला, जिसस सम्पूर्ण नैमिषारण्य की आभा स्वर्णमय हो गयी।[6]

इसी प्रकार "ब्रह्माण्ड पुराण" में अश्वमेध यज्ञ का भी प्रसंग आया है जब राजा सागर ने एक क्षेत्र राज्य के लिए अश्वमेध यज्ञ किया तो सगर के साठ हजार पुत्रों से त्रस्त ऋषि मुनियों की प्रार्थना पर देवताओं ने यज्ञ का अश्व कपिल मुनि के आश्रम में छिपा दिया। अश्व को ढूंढते हुए जब सगर पुत्र आश्रम में पहुंचे जो अपने यज्ञ के अश्व को वहां बंधा देखकर क्रोधित हो उन्होंने सम्पूर्ण आश्रम को क्षत-विक्षत कर दिया, जिसस क्रोधित हो कपिल मुनि ने सागर के साठ हजार पुत्रों का शाप द्वारा भस्म कर दिया तब राजा भगीरथ ने गंगा को पृथ्वी पर लाकर अपने पूर्वजों का उद्धार किया।[7]

इस प्रकार "ब्रह्माण्ड पुराण" में भी यज्ञादि प्रसंगों का वर्णन प्राप्त होता है, जिससे पता चलता है कि उस काल में यज्ञादि का बहुत महत्व था।

५. श्राद्धादि पारलौकिक कर्मः-

जब कोई व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त होता है तो उसके मरणोपरान्त उसके पुत्र-पौत्रादि जन उसकी आत्मिक शान्ति के लिए कुछ कर्म करते हैं, जिससे उसे मरणोपरान्त स्वर्ग की ही प्राप्ति हो उसे ही श्राद्ध कर्म कहते हैं। श्राद्ध कर्म पिण्ड दान द्वारा किया जाता है।

"ब्रह्माण्ड पुराण" में भी श्राद्ध कर्म का वर्णन किया गया है।[8] "ब्रह्माण्ड पुराण" के ही एक प्रसंग में श्राद्ध कर्म का संकेत दिया गया है कि परशुराम ने अपने मृत माता-पिता का विधि-विधान अनुसार पूर्ण रूप से श्राद्ध किया। जहां पर परशुराम ने अपने माता-पिता का तर्पण किया वह कुरुक्षेत्र धाम तभी से आरम्भ करके तीर्थों से सबसे परम श्रेष्ठ तीर्थ बन गया था। वह स्थान सस्मय मन्तक नाम से तीनों लोकों में प्रख्यात हो गया था।[9] क्योकि वहां पर परशुराम जी ने अपने पितृगणों की अक्षय तृप्ति की थी। स्यमन्तक नाम वाला तीर्थ लोक से परिश्रुत है। यह तीर्थ समस्त पापों के क्षय करने वाला है और महान पुण्य से युक्त है। स्यमन्तक पंचक तीर्थ कुरुक्षेत्र में बहुत ही अधिक पावन है।

पुराणकारों ने श्राद्ध के विषय को बड़े ही सांगोपांग रूप में मुख्य तथा अवान्तर प्रभेदों के साथ दिया है। परशुराम की महिमा तथा गौरव का विवेचन असाधारण ढंग से किया गया है। सगर के साठ हजार पुत्रों के उद्धार के लिए राजा भगीरथ द्वारा गंगा को पृथ्वी पर लाये जाने का भी विस्तृत वर्णन किया गया है। गंगा के पृथ्वी पर आने के स्थान से सागर में विलीन होने तक के सभी स्थानों का सांगोपांग वर्णन किया गया है। इस प्रकार राजा सगर और राजा भगीरथ द्वारा गंगा का स्वर्गलोक से पृथ्वी लोक पर अवतरण घोर श्रम द्वारा असम्भव को सम्भव बनाने की लोकप्रिय गाथा है।

६. ब्रह्माण्ड पुराण की भाषा-शैलीः-

अपने प्रतिपाद्य विषय का यथार्थ निरूपण शब्द के माध्यम द्वारा करना ही ग्रन्थकार का उद्देश्य होता है, अभीष्ट विषय का प्रतिपादन जिस भाषा में और जिस शैली में करने से लेखक के भावों की अभिव्यक्ति होती है। वह उसी भाषा और शैली को अपनाता है। अपने विचारों के प्रकटीकरण के निमित्त उसी माध्यम का आश्रयण करता है। पुराण की भाषा का इसी प्रकार अपना

---

[5] शिव महापुराण

[6] ब्र. पु. – कृत्य समुद्देश - 165

[7] ब्र. पु. – खण्ड (2) 2/4/8-14, 6/1-49

[8] ब्र, पु. - कृत्य समुद्देश – 90-91

[9] ब्र. पु. – 36/5-91

विशिष्ट क्षेत्र हैं। पुराण शब्द प्रधान वेदों से तथा शब्द अर्थ को गौण मानकर अभिव्यजन शैली को मुख्यतया मानने वाले काव्यों से भिन्न तथा पृथक होता है। पुराण अर्थप्रधान होता है, अर्थात अभीष्ट अर्थ को प्रकट करने पर ही पुराण का विशेष आग्रह है। इसके निमित्त न वह शब्द का प्राधान्य मानता है और न रस का प्रत्युत अर्थ के प्रकाशन पर ही पुराण का समग्र बल है।

पुराण का लक्ष्य जनसाधारण के चित्त का आवर्जन कर धर्म की ओर प्रवृत कराना है। पुराण इसलिए सरल सुबोध भाषा का प्रयोग अपनाता है पुराण की संस्कृत भाषा सुवोध व्यावहारिक चुस्त तथा अल्पाक्षरों में स्व तात्पर्य को प्रकट करती है। पुराण भाषा की तुलना उस पुण्यसलिला भगीरथी से की जा सकती है, जो अपने मूल प्रवाह पर आग्रह रखती हुई भी इतस्तत आने वाली जलधाराओं का तिरस्कार नहीं करती, प्रत्युत वह उन्हें भी अपने में सम्मिलित कर गन्तव्य स्थान तक पहुंचा देती है। पौराणिक देववाणी की भी यही विशिष्टता है।

पुराणों की भाषा बड़ी ही सुबोध तथा शैली अत्यन्त हृदयग्रहिणी है। पुराण में अलंकार का विन्यास भी इसी मूल तात्पर्य को लक्ष्य में रखकर ही किया गया है। यहां अलंकार काव्यगत शब्द के शोभादायक न होकर काव्यगत अर्थ के ही भूषणाधायक है। जिस प्रकार काव्य की उपमा शास्त्रीय विषयों पर प्रायः अवलम्बित होने में ही अपना गौरव बोध करती है। उस प्रकार की अवस्था पौराणिक उपमा की नहीं है। पुराण अपने मूल स्वरूप के अनुसार ही उन्ही उपमाओं और दृष्टान्तों को प्रयोग में लाता है जो सामान्य जन-जीवन से सम्बन्ध रखती है, जो नित्यप्रति जीवन के अनुभव के भीतर आती है तथा जिन्हें समझने में सामान्य जन को विशेष क्लेश उठाना नहीं पड़ता।

"ब्रह्माण्ड पुराण" में कतिपय उपमायें दृष्टव्य हैं जिनसे पाठको को प्रसंग समझने में सरलता होती है एक उपमा का उदाहरण प्रस्तुत है।

जिस तरह से मद से युक्त मदमस्त गजेन्द्र दौड़ता हुआ नाल वन का मर्दन कर दिया करता है ठीक उसी प्रकार परशुराम ने भी मन और वायु समान तेज गति वाला होकर शत्रु की सेना का मर्दन किया था-

"यथा गजेन्द्रो मदयुक्तसमंततो नालं वनं मर्दयति प्रधायन्।
तथैव रामोऽपि मनोनिलौजा विमर्द्दयामास नृपस्य सेनाम्॥"[10]

पुराणों में रूपक अलंकार का आश्रय लेकर किसी विशिष्ट वस्तु का बड़ा ही साक्षेपांग वर्णन मिलता है। यह वर्णन इतना विस्तृत तथा विशद है कि वह विशिष्ट पदार्थ वर्णन के समकाल ही मानसनेत्रों के सामने उपस्थित हो जाता है। "ब्रह्माण्ड पुराण" में यज्ञवराह के वर्णन में इस रूपकमयी शैली का प्रयोग पुराणकार ने किया है। वराह अवतार धारण कर नारायण ने वेदों का उद्धार किया। पृथ्वी को पाताल से उठाकर स्वस्थान पर प्रतिष्ठित किया, जिससे मानवों की लोकयात्रा का साधन सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर वराह यज्ञ के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है-

"आस्थाय रूपमतुलं वाराहममितं हरिः।
पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविवेश रसातलम्॥"[11]

इसके अतिरिक्त "ब्रह्माण्ड पुराण" में पदार्थों के वर्णन भी बड़े सुन्दर, आलंकारिक तथा चमत्कारी हैं। जमदग्नि आश्रम वर्णन तथा कैलाश पर्वत आदि इसके उदाहरण है। सोलह श्लोकों में वर्णित कैलाश का वर्णन अत्यन्त विस्तृत है। इन श्लोकों के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है, मानों शिवलोक कैलाश नेत्रों के समक्ष उपस्थित हो।

"ब्रह्माण्ड पुराण" में ही अलंकारों की महत्ता बतलायी गयी है। अर्थात् जिस प्रकार से शरीर पर उचित स्थान के विपरीत अलंकार अशोभनीय होते हैं, उसी प्रकार वर्ण का ही अलंकार आत्मा की विभूषा होते हैं। जैसे चरण में कभी कुण्डल तथा कण्ठ में रसना नहीं दिखता उसी प्रकार से अलंकार में विपरतिता बुरी होती है।

"चतुर्विधमिदं ज्ञेयमलंकार प्रयोजनम्।
.....
न पादे कुंडल दृष्टं न कंठे रसना तथा।
एवमेवाद्यलंकारे विपर्यस्तो विगहितम्॥"[12]

---

[10] ब्र. पु. – 27-41

[11] ब्र. पु. – प्रक्रियापाद- 45/9-23

[12] ब्र. पु. – खण्ड (2) 7/23-24

इस प्रकार स्पष्ट है कि "ब्रह्माण्ड पुराण" में श्राद्ध आदि संस्कारी कर्म, वर्णाश्रम व्यवस्था, सती-प्रथा आदि के साथ-साथ पुराण की भाषा व शैली का भी वर्णन है। जिससे पुराण का प्रत्येक वर्णन, सूक्ति अथवा कथा पाठक के हृदयंगम हो। इसके साथ-साथ इसमे रौरव आदि नरकों का वर्णन, चारों युगों का विस्तृत वर्णन भी किया गया है।

ग्रंथसूचीः-

१. तर्करत्न, पंचानन, ***रामायणम्*** (चतुर्थ संस्करण), प्रकाशक- श्रीनटवर चक्रवर्त्ती, कलिकाता, १३१५ (बँगला)।
२. गौतम, चमन लाल, ***ब्रह्माण्ड पुराण*** (द्वितीय खण्ड)।
३. पाण्डेय, राजबली, ***हिन्दु संस्कार***, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९५७।
४. पाण्डेय, रामनारायणदत्त शास्त्री, ***महाभारत*** (द्वितीय खण्ड), गीताप्रेस, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश।
५. शास्त्री, जगदीश, ***ब्रह्माण्ड पुराण।***
६. ***श्रीमद्भागवत सटीक*** (द्वितीय खण्ड) बँगला, गीताप्रेस, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश, २०१६।
७. सिंह, नागशरण, ***अष्टादशस्मृति***, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, २००५।
८. सेन, अतुल चन्द्र, तत्त्वभूषण सीतानाथ तथा घोष महेशचन्द्र, ***उपनिषद्***, हरफ प्रकाशनी, कलकाता, १९९८।